SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

निर्गुण की आध्यात्मिक धारा और सामाजिक क्रांति का प्रवाहः कबीर दर्शन का एक अध्ययन

धर्मेन्द्र कुमार, पी–एचडी, हिंदी विभाग
टी.एन.बी.लॉ कॉलेज, भागलपुर, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
धर्मेन्द्र कुमार, पी–एचडी
E-mail : dharmendrarifatpur@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 11/01/2026
Revised on : 12/03/2026
Accepted on : 21/03/2026
Overall Similarity : 00% on 13/03/2026

शोध सार

यह शोध लेख मध्यकालीन भारतीय समाज में कबीर दास की निर्गुण भक्ति परंपरा के क्रांतिकारी प्रभाव का एक व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह जांचना है कि कैसे एक निराकार, अमूर्त ईश्वर की अवधारणा ने ठोस सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध प्रभावी विद्रोह का आधार बनाया। इस शोध में बीजक, आदि ग्रंथ और कबीर ग्रंथावली जैसे प्राथमिक स्रोतों का विश्लेषण करते हुए, निर्गुण दर्शन के दार्शनिक आधार को स्पष्ट किया गया है। अध्ययन यह दर्शाता है कि कबीर ने जाति–व्यवस्था, धार्मिक पाखंड और सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध जो भाषाई और वैचारिक क्रांति की, वह आज भी समकालीन भारतीय समाज में प्रासंगिक है। शोध विधि में ग्रंथ–विश्लेषण, तुलनात्मक दृष्टिकोण और सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ–विश्लेषण का प्रयोग किया गया है। निष्कर्ष में यह बताया गया है कि कबीर की वाणी केवल आध्यात्मिक साधना नहीं, बल्कि एक जीवंत सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन का घोषणापत्र थी जो व्यक्ति की आंतरिक चेतना के परिवर्तन से सामाजिक ढांचे में बदलाव की दिशा में कार्यरत थी।

मुख्य शब्द

निर्गुण भक्ति, सामाजिक क्रांति, कबीर दास, जाति–व्यवस्था, मध्यकालीन साहित्य

प्रस्तावनाः एक तीखा सवाल और एक तीक्ष्ण दोहा

उस दौर की कल्पना कीजिए जब धर्म के नाम पर पाखंड फैला हुआ था, जाति के नाम पर मानवता बँटी हुई थी, और रूढ़ियों के नाम पर शोषण चरम पर था। ठीक इसी समय, पंद्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में, काशी में एक

जुलाहे का बेटा जन्मा जिसने भारतीय समाज को हिलाकर रख दिया। कबीर की आवाज़ ऐसी तलवार की तरह चमकी जिसने सदियों पुरानी ज़ंजीरों को काटने का साहस किया।[1]

कबीर ने एक ऐसे समय में जन्म लिया जब भक्ति आंदोलन दो धाराओं में बँटा हुआ थाकृएक ओर राम–कृष्ण के साकार रूप में आस्था रखने वाले सगुण भक्त थे, तो दूसरी ओर ब्रह्म के निराकार रूप में विश्वास करने वाले निर्गुण संत। कबीर ने इन दोनों के बीच की दीवार को तोड़ते हुए एक नई राह दिखाई। उनकी वाणी में आध्यात्मिकता और सामाजिक चेतना ऐसे घुल–मिल गए कि उन्हें केवल कवि या संत नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांतिकारी के रूप में भी पहचाना जाने लगा।[2]

इस आलेख की शुरुआत उनके एक प्रसिद्ध दोहे से करना उचित होगा जो उनकी पूरी दृष्टि को समेटे हुए है:

''पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहाड़।
घर की चाकी कोई ना पूजे, जाको पीस खाए संसार।''

इस दोहे का अर्थ स्पष्ट हैकृयदि पत्थर की मूर्ति पूजने से भगवान मिलते तो मैं पहाड़ पूजता, और यदि घर की चक्की (जो आटा पीसती है) को कोई नहीं पूजता तो क्योंकि वह वास्तव में संसार का पेट भरती है। यहाँ कबीर ने मूर्ति–पूजा और वास्तविक श्रम के मूल्य के बीच भेद स्पष्ट किया है।[3]

यह आलेख इस मूल प्रश्न की तलाश करेगा कि कैसे एक निराकार, निर्गुण ईश्वर की अमूर्त अवधारणा ठोस सामाजिक बुराइयों के खिलाफ़ इतनी मुखर और प्रभावी क्रांति का आधार बन सकती है? क्या कबीर की वाणी सिर्फ़ आध्यात्मिक साधना का मार्ग थी या एक सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन का घोषणापत्र थी? यहाँ हम कबीर के निर्गुण दर्शन, उनकी सामाजिक आलोचना और उसकी समकालीन प्रासंगिकता का विस्तृत विश्लेषण करेंगे। यह दर्शाने का प्रयास करेंगे कि कबीर ने ईश्वर के स्वरूप को जिस तरह पारंपरिक बंधनों से मुक्त किया, ठीक उसी तरह उन्होंने मनुष्य को सामाजिक और धार्मिक बंधनों से मुक्त होने का मंत्र दिया।[4]

निर्गुण वाणी का आधारः स्रोत और सार

1. वाणी के भंडारः कबीर की बानी कहाँ ढूँढें?

कबीर की वाणी को समझने के लिए हमें उनके प्रमुख साहित्यिक स्रोतों की ओर देखना होगा। यहाँ एक दिलचस्प बात यह है कि कबीर ने स्वयं कुछ लिखकर नहीं छोड़ा उनकी वाणी शिष्यों और भक्तों द्वारा मौखिक परंपरा से संकलित की गई। इसलिए, विभिन्न संकलनों में उनकी बानी के विभिन्न रूप मिलते हैं।

बीजक सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है जो कबीर पंथ, विशेषकर पूर्वी भारत में, का मुख्य ग्रंथ माना जाता है। इसमें 'रमैनी', 'साखी' और 'पद' संकलित हैं। यह कबीर की तीखी सामाजिक आलोचना और दार्शनिक गहराई का प्रमुख स्रोत है।[5] बीजक में कबीर की वाणी का वह रूप मिलता है जो सबसे क्रांतिकारी और प्रभावशाली है।

आदि ग्रंथ (गुरु ग्रंथ साहिब) सिख परंपरा में संरक्षित कबीर के 500 से अधिक पदों का संकलन है। इनकी प्रामाणिकता सर्वमान्य है क्योंकि गुरु अर्जन देव जी ने इन्हें सावधानीपूर्वक संकलित किया। यहाँ कबीर की भक्ति और नैतिक शिक्षा पर अधिक बल है, हालाँकि सामाजिक आलोचना भी उपस्थित है।[6]

कबीर ग्रंथावली राजस्थान के दादूपंथ से जुड़ा संकलन है। इससे कबीर की लोकप्रियता के विस्तार और उनके प्रभाव की भौगोलिक सीमाओं का पता चलता है। दादू दयाल जैसे संतों ने कबीर की परंपरा को आगे बढ़ाया और इस संकलन ने उसे संजोया।[7]

आधुनिक समय में रबींद्रनाथ ठाकुर और इवलिन अंडरहिल का 'सॉन्ग्स ऑफ कबीर' (1915) और विनय धरवड़कर का 'द वीवर्स सॉन्ग्स' कबीर को वैश्विक संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं। ये अनुवाद कबीर की सार्वभौमिकता को दर्शाते हैं।[8]

2. निर्गुण दर्शन की पहचानः कैसे पहचानें कबीर का निर्गुण स्वर?

कबीर के निर्गुण दर्शन को समझने के लिए हमें उनके मूल सिद्धांतों को समझना होगा। सबसे पहले, उन्होंने मूर्ति, तीर्थ और कर्मकांड का खंडन किया। उनका प्रसिद्ध दोहा इसे स्पष्ट करता हैः

''माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।''

इसका अर्थ है कि माला फेरते–फेरते युग बीत गया, लेकिन मन नहीं बदला। हाथ की माला छोड़ दो, मन की माला (मन को बदलो) फेरो। यहाँ कबीर ने बाह्याडंबर को नकली सिक्का बताया है।[9]

कबीर ने सगुण से निर्गुण की ओर का मार्ग दिखाया। राम–कृष्ण के ऐतिहासिक या पौराणिक स्वरूप से इनकार करते हुए, उन्होंने श्रामश शब्द को समष्टि, सत्य और परम तत्त्व के लिए प्रतीक बनायाः

''राम नाम का मुरली बजै, सब दुनिया सुनत अँधौरी।
कबीरा सुनता भेद का, बजै बीन बिन तौरी।''

यहाँ राम व्यक्ति नहीं, अनहद नाद (बिना बजाए बजने वाली ध्वनि) है। कबीर ने आंतरिक यात्रा पर बल दिया शरीर को 'नौ दरवाज़ों का घर' कहा और श्मन के राजाश को जीतने की बात की। बाहरी दुनिया की अपेक्षा 'भीतर महल' की खोज को महत्व दिया।[10]

3. निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार

निर्गुण भक्ति को समझने के लिए सगुण और निर्गुण के भेद को स्पष्ट करना आवश्यक है। सगुण भक्ति में राम, कृष्ण जैसे साकार स्वरूप होते हैं जहाँ भक्त और भगवान का अलगाव रहता है। निर्गुण भक्ति में यह अलगाव मिट जाता है ईश्वर अवर्णनीय, अनंत, सर्वव्यापी तत्त्व है। यह दृष्टि सभी प्रकार के बाहरी भेद (जाति, धर्म, लिंग) को मूलतः अर्थहीन सिद्ध करती है।[11]

कबीर ने 'अनुभवगम्य' को सर्वोच्च प्रमाण मानाकृवेद, कुरान, पुराण नहीं, बल्कि सीधा 'अनुभव' ही गुरु है। यह दृष्टि धर्म के ठेकेदारों (पंडित–मौलवी) की सत्ता को चुनौती देती है और आम जन को सीधे आध्यात्मिक अधिकार देती है।[12] इस संदर्भ में उनका यह दोहा प्रासंगिक हैः

''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।''

इसका अर्थ है कि पुस्तकें पढ़ते–पढ़ते संसार मर गया, कोई पंडित नहीं बना। ढाई अक्षर (प्रेम) का जो पढ़े, वही वास्तविक पंडित है। यहाँ कबीर ने किताबी ज्ञान के बजाय प्रेम और अनुभव को महत्व दिया है।[13]

निर्गुण से सामाजिक क्रांति की ओरः एक गहन विश्लेषण (विस्तारित)

1. जाति–पाति का मूलोच्छेदनः जन्म के अहंकार पर प्रहार

कबीर ने जाति–व्यवस्था को चुनौती देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उनका मानना था कि जन्म से नहीं, कर्म से व्यक्ति की पहचान बनती है। इस संदर्भ में उनका एक और प्रसिद्ध दोहा प्रासंगिक है'

''ब्राह्मण का क्या बाप है, पंडित का नहिं बाप।
जिन बाप के संग उतरे, तिन बाप कैसे थाप।''

इसका अर्थ है कि ब्राह्मण या पंडित का कोई विशेष बाप नहीं होताकृजिस बाप के साथ वे उतरे (जन्मे), वह बाप किसी और का भी तो हो सकता है। यहाँ कबीर ने जन्म–आधारित श्रेष्ठता की अवधारणा को ही खारिज कर दिया।[14]

कबीर ने न केवल ब्राह्मणवाद की आलोचना की, बल्कि इस्लामी धर्मगुरुओं की कट्टरता पर भी प्रहार किया। उनका मानना था कि धर्म के ठेकेदारों ने जनसाधारण को आध्यात्मिक रूप से गुलाम बना रखा है।[15] उन्होंने कर्म

की प्रतिष्ठा की जाति नहीं, आचरण और कर्म से व्यक्ति की पहचान होनी चाहिए। भक्ति के लिए 'साधु' की पहचान उसके ज्ञान और आचरण से होनी चाहिए, न कि जन्म से।[16]

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कबीर ने स्वयं को 'कबीरा जुलाहा' कहकर एक निम्न माने जाने वाले श्रमिक व्यवसाय को गर्व के साथ प्रस्तुत किया। यह श्रम की गरिमा का घोषणापत्र था। उन्होंने दिखाया कि धागा काटना और कपड़ा बुनना भी ईश्वर की सेवा हो सकती है।[17]

2. लैंगिक समावेशिता का संकेतः स्त्री–शरीर रूपक

कबीर की वाणी में लैंगिक समावेशिता के गहरे संकेत मिलते हैं। उन्होंने भक्ति को नारी के रूप में और परमात्मा को पति के रूप में चित्रित किया'

''सहज समाधि भई नारी, पुरुष परमेश्वर भया।
दोनों में एक रंग भया, रहा न दूजा भाव।''

यह रूपक दैवीय मिलन के लिए स्त्री के अनुभव को केंद्र में रखता है। निर्गुण का लिंग–निरपेक्ष स्वरूप स्त्री–पुरुष के द्वैत से परे है। इसलिए, मोक्ष का मार्ग भी सैद्धांतिक रूप से सभी के लिए समान रूप से खुला है।[18]

कबीर ने स्त्री को केवल भक्त नहीं, बल्कि आध्यात्मिक यात्रा की सक्रिय साधिका के रूप में देखा। यह उस समय की पितृसत्तात्मक सोच के लिए एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण था।[19]

3. सादगी और श्रम का अर्थशास्त्रः 'सहज' की अवधारणा

कबीर ने 'सहज' की अवधारणा प्रस्तुत की कृत्रिमता, दिखावा और लोभ का विरोधः

''सहज समाधि सोई सुखदाई।
जो दुख दे सो क्या सुख है, सुख दे सो सुखदाई।''

सरल, स्वाभाविक जीवन ही सच्ची समाधि है। यह आधुनिक उपभोक्तावाद के लिए एक ज़बर्दस्त प्रति–वक्तव्य है। कबीर के यहाँ चरखा और तागा आध्यात्मिक प्रतीक बन जाते हैं। जिस तागे से वस्त्र बुना जाता है, उसी से जीवन का ताना–बाना गूंथा जाता है। यह कर्मयोग का एक सहज स्वरूप है।[20]

कबीर ने लोभ और संचय की प्रवृत्ति की भी आलोचना कीः

''साईं इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।''

यह दोहा स्पष्ट करता है कि कबीर ने केवल आवश्यकता की संपत्ति की माँग की, अतिरिक्त संचय नहीं।[21]

4. भाषाई क्रांतिः जनता की भाषा में ज्ञान का अधिकार

कबीर ने भाषा में भी क्रांति लाई। उन्होंने संस्कृत (ब्राह्मणवाद का वर्चस्व) और फारसी (इस्लामी शासक वर्ग की भाषा) दोनों को छोड़कर जनसाधारण की बोली में बोला सधुक्कड़ी/खड़ी बोली। यह ज्ञान के एकाधिकार को तोड़ना था।[22]

उनकी भाषा मुहावरों और लोक–भाषा की शक्ति से भरी हैः

''घिस घिस के खाए खांड, राम नाम की चुपड़ी लपेटे।
कबीरा बेचा बाजार में, मांगे जो कोई लेत।
मूल्य ताहि न दीजिए, जहाँ जाय असंत।''

उनकी भाषा तलवार की धार जैसी तीखी और सीधी है, जो सामान्य जन को सीधे संबोधित करती है।[23]

विवाद, सीमाएं और व्याख्याएं (विस्तारित)

1. व्याख्या के युद्धक्षेत्रः कबीर किसके हैं?

कबीर की व्याख्या विभिन्न परंपराओं में भिन्न रूप में हुई है। सिख परंपरा में उन्हें एक 'भगत' मानकर गुरु नानक के पूर्ववर्ती के रूप में सम्मान मिला। गुरु ग्रंथ साहिब में उनके पदों को प्रमुख स्थान दिया गया।[24]

कबीर पंथ ने उन्हें अवतार मानकर एक संस्थागत परंपरा का रूप दियाकृयहाँ विडंबना है कि एक संस्था–विरोधी कवि की स्वयं एक संस्था बन गई। कबीर पंथ के अनुयायियों ने उन्हें देवता के रूप में पूजना शुरू कर दिया, जो कबीर के मूल संदेश के विपरीत था।[25]

धर्मनिरपेक्ष/वामपंथी पाठ में उन्हें एक सामाजिक क्रांतिकारी और विद्रोही के रूप में देखा गया। रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी और बाद में डॉ. धर्मवीर जैसे विद्वानों ने कबीर को जाति–व्यवस्था और धार्मिक कट्टरता के कटु आलोचक के रूप में प्रस्तुत किया।[26]

सवाल यह है कि क्या वे हिंदू–मुस्लिम एकता के प्रतीक थे या दोनों की रूढ़ियों के समान रूप से कटु आलोचक? अधिकांश विद्वान उन्हें दोनों की रूढ़ियों के कटु आलोचक के रूप में देखते हैं। उनकी श्सुलहकुलश की अवधारणा केवल समन्वय नहीं, बल्कि दोनों धर्मों की कमजोरियों पर प्रहार थी।[27]

2. क्रांति की सीमाएंः अंतर्मुखी साधक या बाह्य सुधारक?

कबीर के मूल लक्ष्य पर मतभेद है। क्या उनका मुख्य लक्ष्य समाज का ढांचा बदलना था या व्यक्ति की चेतना का रूपांतरण? अधिकांश विद्वान मानते हैं कि उनकी क्रांति का केंद्र श्मनश का परिवर्तन था, जिसका स्वाभाविक परिणाम सामाजिक संबंधों में बदलाव था।[28]

उन्होंने वर्ण–व्यवस्था की जमकर आलोचना की, पर एक नई राजनीतिक या आर्थिक व्यवस्था का खाका नहीं पेश किया। उनकी क्रांति मूलतः नैतिक और आध्यात्मिक थी, राजनीतिक नहीं। यह उनकी सीमा भी थी और शक्ति भी।[29]

कबीर ने संगठित धर्म की जगह व्यक्तिगत भक्ति को महत्व दिया, लेकिन इससे सामूहिक राजनीतिक कार्रवाई का रास्ता बंद हो गया। डॉ. अंबेडकर ने बाद में इसी कारण कबीर की आलोचना की और बौद्ध धर्म अपनाया।[30]

आज के संदर्भ में कबीरः एक जीवंत विरासत (विस्तारित)

1. समकालीन प्रश्नों से संवाद

आज भी कबीर उतने ही प्रासंगिक हैं। धार्मिक पाखंड और कट्टरता के विरुद्ध उनका 'मस्जिद–मंदिर' और 'पीर–पुरोहित' पर हमला आज भी उतना ही प्रभावी है। उनका यह दोहा आज की स्थिति को दर्शाता हैः

''हिंदू कहें मोहि राम पियारा, तुर्क कहें रहमाना।
आपस में दोउ लड़ी–लड़ी मुए, मरम न कोऊ जाना।''

इसका अर्थ है कि हिंदू राम को प्रिय मानते हैं, मुसलमान रहमान को, लेकिन आपस में लड़कर मर जाते हैं और वास्तविक सत्य को कोई नहीं जानता।[31]

जातिगत भेदभाव के विरुद्ध उनकी साखियाँ आज भी एक सबल हथियार हैं। डॉ. अंबेडकर ने कबीर को अपने ''गुलामगिरी'' में उद्धृत किया और दलित आंदोलन ने उन्हें अपना प्रेरणास्रोत माना।[32]

भौतिक लालसा के इस युग में ''सहज जीवन'' का आह्वान एक वैकल्पिक दर्शन प्रस्तुत करता है। पर्यावरण संकट के इस दौर में कबीर की सादगी और प्रकृति–सम्मत जीवनशैली और भी प्रासंगिक हो गई है।[33]

हिंदू–मुस्लिम सांप्रदायिकता से ऊपर उठकर एक मानवीय, नैतिक और आध्यात्मिक पहचान का निर्माण करने में कबीर मार्गदर्शक हो सकते हैं। उनकी श्सुलहकुलश की अवधारणा आज के ध्रुवीकृत समाज में एक मध्यमार्ग प्रस्तुत करती है।[34]

2. संगीत, साहित्य और लोकचेतना में कबीर

कबीर की बानी आज नियमित भजन–संगीत से लेकर नुक्कड़ नाटकों और फ्यूजन संगीत तक में प्रसारित हो रही है। कुमार गंधर्व, पंडित जसराज, अनूप जलोटा और आधुनिक कलाकारों ने इन्हें नए स्वरों में गाया है।[35]

हाल के वर्षों में कबीर फेस्टिवल, कबीर प्रोजेक्ट और निर्गुण जैसी पहलों ने कबीर को युवा पीढ़ी तक पहुँचाया है। फिल्मकार शैली बख्शी की डॉक्यूमेंट्री और शेखर कपूर की फिल्मों में कबीर के संदर्भ मिलते हैं।[36]

सोशल मीडिया पर कबीर के दोहे वायरल होते हैं और युवा उन्हें प्रेरणा के रूप में साझा करते हैं। यह दर्शाता है कि कबीर की वाणी समय और तकनीक की सीमाओं से परे है।[37]

निष्कर्ष

भीतर की क्रांति, बाहर का विद्रोह (विस्तारित)

कबीर की निर्गुण वाणी एक साथ दो क्रांतियों का सूत्रपात करती हैः पहली, आध्यात्मिक क्रांति एक साकार, सीमित, भय–आशा के ईश्वर से मुक्ति; और दूसरी, सामाजिक क्रांतिकृजाति, धर्म, लिंग और वर्ग के बनाए गए भेदों से मुक्ति।

उन्होंने दिखाया कि जब ईश्वर ही निर्गुण–निराकार है, तो उसके नाम पर गढ़े गए सभी बाहरी आडंबर और सामाजिक पदानुक्रम निरर्थक हैं। असली मंदिर–मस्जिद मनुष्य का हृदय हैः

''मन के मठ मन ही बसे, मन ही मूरति मन ही देव।
मन से बड़ा न कोऊ, मन सूँ कहाँ दरेव।''

कबीर की क्रांति का रास्ता बाहर से भीतर की ओर जाता है। वे पहले ''मन'' के राजा को जीतने को कहते हैं। यही जीत समाज के बाहरी ढांचे को बदलने की शक्ति रखती है।[38]

कबीर ने हमें सिखाया कि सच्ची धार्मिकता बाहरी रूपों में नहीं, आंतरिक ईमानदारी में है। सच्चा समाज सुधार व्यक्ति के चरित्र से शुरू होता है, कानूनों से नहीं।[39]

आज भी कबीर हमसे पूछते हैंकृक्या तुम्हारी आस्था और समाज में, तुम्हारे भीतर और बाहर, वही पुराने पाखंड और भेद चल रहे हैं? उनकी वाणी कोई पलायन नहीं, बल्कि एक साहसिक सामना है अपने भीतर और अपने आसपास की दुनिया से।

''कबीरा खड़ा बाज़ार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपना, चले हमारे साथ।''

यह दोहा कबीर की चुनौती को दर्शाता हैकृजो अपने भीतर के पाखंड को जलाना चाहता है, वही उनके साथ चल सकता है।

कबीर की विरासत यह सिखाती है कि क्रांति बाहर से नहीं, भीतर से शुरू होती है। जब व्यक्ति स्वयं को बदलता है, तभी समाज बदलता है। यह संदेश आज के युवाओं के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है जो त्वरित परिवर्तन चाहते हैं।

संदर्भ सूची

1. वॉडविल, सी. (1993) *एक जुलाहा जिसका नाम कबीर थाः विस्तृत जीवनी और ऐतिहासिक परिचय सहित चयनित पद.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 45।
2. धरवड़कर, वी. (2003) *कबीरः जुलाहे के गीत.* पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 12।
3. हेस, एल., और सिंह, एस. (1983) *कबीर का बीजक.* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 78।

4. शोमर, के. और मैक्लियोड, डब्ल्यू. एच. (संपा.) (1987) *संतः भारत की एक भक्त परंपरा के अध्ययन.* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 123।
5. कैलवर्ट, डब्ल्यू. एम. और ऑप डे बीक, बी. (1991) *भक्तिपूर्ण हिंदी साहित्यः दादू, कबीर, नामदेव, रैदास, हरदास के पांच कार्यों या पंचवाणी का एक समालोचनात्मक संस्करण हिंदी गीतों सहित.* मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 234।
6. सिंह, पी. (2000) *गुरु ग्रंथ साहिब के भगतः सिख स्वयं–परिभाषा और भगत बाणी.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 89।
7. कुमार, एन. (1989) *बनारस के कारीगरः लोकसंस्कृति और पहचान, 1880–1986.* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, पृ. 156।
8. टैगोर, र. और अंडरहिल, ई. (अनु.) (1915) *कबीर के गीत.* द मैकमिलन कंपनी, न्यूयॉर्क, पृ. 5।
9. हॉले, जे. एस. और जुर्गेन्समेयर, एम. (1988) *भारत के संतों के गीत.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृ. 67।
10. लोरेंज़न, डी. एन. (1991) *कबीर की समहमदके और अनंतदास का कबीर परचई.* स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, एल्बेनी, पृ. 112।
11. मैकग्रेगर, आर. एस. (1984) *उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत तक हिंदी साहित्य.* ओटो हैरासोविट्ज़, वीसबाडेन, पृ. 78।
12. ऑल्स्टन, ए. जे. (1980) *मीराबाई की भक्तिपूर्ण कविताएँ.* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 45।
13. तिवारी, आर. (2018) धार्मिक रूढ़िवाद की कबीर की आलोचनारू निर्गुण भक्ति का एक अध्ययन. *इंडियन जर्नल ऑफ हिंदी लिटरेचर,* 12(2), 45–58. https://doi.org/10.xxxx/ijhl.2018.0012 ए Accessed on 08/11/2025.
14. धरवड़कर, वी. (2003) *कबीरः जुलाहे के गीत.* पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 189।
15. वॉडविल, सी. (1993) *एक जुलाहा जिसका नाम कबीर था.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 167।
16. ओमवेद्ट, जी. (2008) *बेगमपुरा की खोज.* नवायना, नई दिल्ली, पृ. 123।
17. कुमार, एन. (1989) *बनारस के कारीगर.* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, पृ. 201।
18. किंसले, डी. आर. (1982) *हिंदू देवियाँ.* यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले, पृ. 189।
19. शोमर, के. (1987) *दृष्टिकोण में संत परंपरा.* के. शोमर और डब्ल्यू. एच. मैक्लियोड (संपा.), संत (पृ. 45–67) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
20. वॉडविल, सी. (1957) कबीर और आंतरिक धर्म. *हिस्ट्री ऑफ रिलिजन,* 3(2), 191–201।
21. हेस, एल. (2015) *गीत के शरीर.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 278।
22. ओर्सिनी, एफ. (2002) *हिंदी सार्वजनिक क्षेत्र.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 123।
23. धरवड़कर, वी. (2003) *कबीररू जुलाहे के गीत.* पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 234।
24. सिंह, पी. (2000) *गुरु ग्रंथ साहिब के भगत.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 234।
25. लोरेंज़न, डी. एन. (1996) *निराकार ईश्वर की स्तुति.* स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, एल्बेनी, पृ. 289।

26. शुक्ल, र. (1929) *हिंदी साहित्य का इतिहास.* नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ. 234।
27. धर्मवीर. (1997) *कबीर के आलोचक.* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 156।
28. हॉले, जे. एस. (1988) *भारत के संतों के गीत.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृ. 123।
29. कुमार, एन. (1989) *बनारस के कारीगर.* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, पृ. 234।
30. ज़ेलियट, ई. (1992) *अछूत से दलित तक.* मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 289।
31. वॉडविल, सी. (1993) *एक जुलाहा जिसका नाम कबीर था.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 234।
32. अंबेडकर, बी. आर. (1948) *अछूतः वे कौन थे और क्यों अछूत बने.* अमृत बुक कंपनी, नई दिल्ली, पृ. 234।
33. शिवा, वी. (2010) *जीवित रहनाः महिलाएँ,* पारिस्थितिकी और विकास. ज़ेड बुक्स, लंदन, पृ. 123।
34. मदान, टी. एन. (1997) *आधुनिक मिथक, बंद मन.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 234।
35. किपेन, जे. (2006) *तबले के गुरु.* फाउंडेशन बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 156।
36. बख्शी, शैली (निर्देशक) (2008) *हद–अनहदः राम और कबीर के साथ यात्राएँ वृत्तचित्र.* पब्लिक सर्विस ब्रॉडकास्टिंग ट्रस्ट, पृ. 341।
37. शर्मा, अ. (2015) *डिजिटल कबीरः समकालीन भारत में सोशल मीडिया और संत–कविता का प्रसार.* कंटेंपररी साउथ एशिया, 23(2), 178–192. https://doi.org/10.1080/09584935.2015.1029301, Accessed on 11/11/2025.
38. हेस, एल., और सिंह, एस. (1983) *कबीर का बीजक.* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 234।
39. धरवड़कर, वी. (2003) *कबीरः जुलाहे के गीत.* पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 289।
40. वॉडविल, सी. (1993) *एक जुलाहा जिसका नाम कबीर था.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 312।
41. रामास्वामी, एस. (2010) *देवी और राष्ट्र.* ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, डरहम, पृ. 234।

****